# 23

# बहिरङ्ग साधन

## प्रस्तावना

परम्परा साधनों को ही शास्त्रों में कुछ लोग बहिरङ्ग साधन ऐसा भी कहते हैं। अन्त: करण शुद्धि के जितने भी कारण है साधन है वे सभी इसके अन्तर्गत होते हैं। कर्म योगादि अनेक प्रकार के साधनों को अन्त:करण शुद्धि के कारणों को शास्त्रों में उपदिष्ट है। प्रसिद्ध परम्परा साधनों का इस पाठ में शास्त्रानुसार विवरण दिया जा रहा है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अद्वैतवेदान्त के अनुसार मोक्ष के परम्परा साधन कौन से हैं यह जान पाने में;
- कर्मों का और उपासनाओं का मोक्ष के उपाय रूप में अनुष्ठान कैसे करें यह जान पाने में;
- शास्त्रों में प्रसिद्ध कर्म-योगादि और परम्परा साधनों के विषय में विस्तार पूर्वक जान पाने में।

## 23.1 मोक्ष की परम्परा साधन

मोक्ष की परम्परा इसका अभिप्राय यह है कि मोक्ष के प्रति प्रत्यक्ष-साधनों का ब्रह्मज्ञान के उत्पत्ति में जितने परम्परा साधन होते हैं वही जानने चाहिए।

चित्त शुद्धि के कारण, साधन ही परम्परा साधन अथवा बहिरङ्ग साधन होता है यह

प्रसिद्ध है। परम्परा साधनों को अनेक प्रकार से शास्त्र में निर्दिष्ट है। ''आहार शुद्धोसत्वशुद्धि:'' यह छान्दोग्योपनिषद् में (7.26.2) सुना जाता है। यहाँ आहार शब्द की व्याख्या भाष्कार भगवत्पाद द्वारा इस प्रकार की गई है- ''आहित्रयत इति आहार: शब्दादि विषयज्ञानम् इति''। इन्द्रियों के द्वारा शुद्ध विषयों का संयमपूर्वक सेवन के द्वारा अन्त:करण शुद्ध होता है ऐसा भगवत् पूजयपाद का आशय है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्भगीता में कहा है- यज्ञ, दान, तप इन सबका कामना हित भाव से पालन करना चित्तशुद्धि के कारण होते हैं ऐसा हमें उपदेश देते हैं- ''यज्ञो दानं तपश्चैन पावनानि मनीषिणाम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता 18.5) में ''मनुमहर्षि: मनुस्मृतौ तप: चित्तशुद्धे: साधनम् भवति इति बोधपति तपसा कल्मषं हन्ति'' (मनुस्मृति 12.104) में। कर्मयोग के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है यह भी भगवान् ने गीता शास्त्र में उपदेश दिया है- ''योगिन: कर्म कृर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्मशुद्धये''।। (श्रीमद्भगवद्गीता 5.11)। ध्यान के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है यह भी भगवान ने गीताशास्त्र में कहा है- ''उपविश्यासने युत्रज्याद् योगम् आत्मविशुद्धये'' (श्रीमद्भगवद्गीता 6.12) में। योगदर्शन में प्रसिद्ध यम-नियमादि साधन से भी अन्त:करण की शुद्धि होती है ऐसा शंकरभगवत्पाद् ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्वीकार करते हैं। और भी अनेक प्रकार साधन है जो कि सत्व शुद्धि के कारण ऐसा शास्त्रों में देखा जाता है।

यहाँ पर हम सब कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, यम-नियमादि इन चार प्रकार के परम्परा साधनों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

### पाठगत प्रश्न 23.1

1. परम्परा साधनों को और क्या कहा जाता है?
2. शास्त्र में निर्दिष्ट अनेक प्रकार के परम्परा साधन कौन से हैं?

## 23.2 कर्मों का और उपासनाओं का मोक्ष की प्राप्ति में उपाय रूप में पालन

ब्रह्मविद्या के द्वारा अविद्यामय संसार की निवृत्ति होती है, और नित्य, निरतिशय, आनन्द प्राप्ति महत्व प्रयोजन ब्रह्मविद्या के द्वारा सिद्ध होता है। ऐसा हमें ज्ञान हुआ। लेकिन सभी जीवों के स्वरूप ब्रह्म ही है ऐसा बार-बार सुनकर भी किस कारण से हमारे अन्त:करण में ब्रह्मविद्या उत्पन्न क्यों नहीं होती यह शंका है। वहाँ कारण हमारे अन्त:करण की मलिनता है। सत्व, रज, और तममय गुणों तथा अज्ञान से उत्पन्न अन्त:करण है सभी का। इसीलिए अन्त:करण तीन प्रकार का होता है। उन तीन गुणों में से जो सत्वगुण है वह प्रकाशक है। रजो गुण काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि को उत्पन्न करता है। और तमोगुण प्रमाद आलस्य, निद्रा, मोह आदि का जनक है। रज और तम के नष्ट हो जाने

से और सत्व गुण के आधिक्य से अन्त:करण का सभी यथार्थ वस्तुओं का बोध कराता है। रज और तम से युक्त अन्त:करण देखे गये का, हुए गये का, सुने गये का, सधे गये का, रसन क्रिया का उक्त विषयों का यथार्थ ज्ञान नहीं करा सकता। इन सभी ने ट्यूबलाईट देखी है। ट्यूबलाईट प्रकाशक द्रव्यों से परिपूर्ण है। लेकिन उसका बाह्य हिस्सा धूलादि के कारण मलिनता से युक्त है। वह अपने अन्दर निहित प्रकाशक, बाहर प्रकाश देने में असमर्थ हो जाता है। उसी प्रकार अन्त:करण बोध कराने में सक्षम सत्वगुण के रहने पर भी रज और तम से युक्त होने के कारण अशुद्ध है इसीलिए अपने अन्दर समाहित ब्रह्म को जानने में असमर्थ होता है। इसीलिए यदि हम ब्रह्मविद्या प्राप्त करना चाहते तो हमें पहले अन्त:करण की शुद्धि यत्न पूर्वक करनी चाहिए। अन्त:करण में विद्यमान सत्व गुण से रजोगुण और तमो गुण दूर करना चाहिए ऐसा अर्थ है। इसीलिए अन्त:करण की शुद्धि सत्वशुद्धि के नाम से भी जानी जाती है। जिसका सत्व शुद्धि है उसी का साधन चतुष्टय सिद्ध होता है। साधन चतुष्टय से सम्पन्न ही ब्रह्म का बोध कराने वाले वेदान्त वाक्यों को सुनकर ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं।

अन्त:करण की शुद्धि हम कैसे कर सकते हैं। योग बुद्धि के द्वारा (योगबुद्धि: निरहंकार नि:स्वार्था बुद्धि:।) यदि हम कर्मों का उपासनाओं का पालन करें तो हमारा अन्त:करण क्रम से शुद्ध होता जायेगा। प्राय: शारीरिक कर्म ही कर्म शब्द से कहाँ चला जाता है और मानसिक कर्म उपासना शब्द से व्यवहित होता है। शास्त्र में अनेक प्रकार के कर्मों को तथा उपासनाओं को बताया गया है। उन कर्मों का और उपासनाओं को विधि पूर्वक पालन करने से यदि हम सब इन कर्मों को और उपासना को केवल फल की इच्छा से ही करेंगे तो हम बार-बार कामनाओं के वशीभूत ही होते रहेंगे। कथन को स्पष्ट कर रहे हैं यदि फल की इच्छा को त्यागकर कर्म और उपासना में प्रवृत्त होने पर हमारा अन्त:करण शुद्ध और एकाग्र होगा। निर्मल और एकाग्र से युक्त अन्त:करण साधनचतुष्टय से परिपूर्ण हो जायेगा। वैसे अन्त:करण में वेदशास्त्र के श्रवण के द्वारा बह्मविद्या जागृत हो जायेगी। इसीलिए मुद्भि की कामना से निष्काम-भाव से कर्मों का तथा उपासना का पालन करना चाहिए।

काम्य, निषिद्ध, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, यह पाँच कर्म कहे गये हैं। जिन कर्मों के द्वारा अभीष्ट फल (स्वर्गादि) की प्राप्ति होती है वह कर्म काम्य कहलाता है। जिन कर्मों का नरकादि अनिष्ट फल वे जो शास्त्र के द्वारा प्रतिषेध कर्म निषिद्ध कर्म है। ब्राह्मणादि वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रम को उद्देश्य बनाकर नित्य कर्तव्य के रूप में शास्त्र द्वारा विहित जो कर्म है वह नित्य कर्म कहलाता है। पुत्र जन्मादि के जैसे कुछ विशिष्ट निमित्त को आधार बनाकर जितने भी कर्तव्य कर्म है वे सब नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं। कोई किया पाप हो तो उसके नाश के लिए जो कर्म है वह प्रायश्चित कहलाता है। इनमें से काम्य ओर निषिद्ध को छोड़कर शेष जो तीन कर्म है वह हमें करने चाहिए। इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, शास्त्र प्रसिद्ध कर्मों को श्रेष्ठ जनों के द्वारा उपदिष्ट कर्मों को मोक्ष साधन के रूप में हमें पालन करना चाहिए। इसी को वेदान्त शास्त्र में कर्मयोग कहा जाता है। कर्म योग के द्वारा चित्त के मलों का नाश होता है और उसके बाद

चित्त शुद्ध होता है। उपासना दो प्रकार की होती है- सगुण ब्रह्मविषयक और निर्गुण ब्रह्मविषयक के भेद से। सगुणब्रह्मविषयक उपासना को ही ब्रह्मविद्या का बहिरंग साधन अथवा परम्परा साधनों में गिना जाता है। निर्गुण ब्रह्मविषयक उपासना तो निदिध्यासन नाम के द्वारा प्रसिद्ध है। वह अन्तरङ्ग साधनों में अन्तर्भूत हो जाता है- ''श्रवणम् मननं निदिध्यासनञ्च ब्रह्मविद्योत्पत्तिम् प्रति अन्तरङ्ग साधनानि भवन्ति''। सगुण ब्रह्मविषयक उपासना उपनिषदों में मुख्यतया दो प्रकार के कहे गये हैं- अदृङ्ग्रहोपासना और प्रतीकोपासना के भेद से। इन दो प्रकार की उपासनाओं का अपना-अपना फल है। उन फलों में कामना को छोड़कर चित्तशुद्धि के लिए उपासना की जा सकती है। अन्त:करण की शुद्धि के द्वारा ब्रह्म विद्या को जागृति करने का उपायभूत अन्य और दो प्रकार की उपासनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। पहला ध्यानयोग और दूसरा भक्तियोग। ध्यान और भक्ति मन के द्वारा ही होती है इसलिए ध्यानयोग और भक्तियोग का मानसव्यापार रूप उपासना में अन्तर्भाव हो जाता है। ध्यान के द्वारा चित्त विक्षेपों के नाश से चित्त की एकाग्रता होती है। एकाग्रता चित्तशुद्धि को बढ़ाता हैं, और साधन चतुष्टय की उत्पत्ति में सहायता प्रदान करता है। भक्ति के द्वारा ईश्वर प्रसन्न होता है, और भगवान् की कृपा से चित्त की शुद्धि होती है, साधन चतुष्टय वेदान्त वाक्य के अर्थो का बोध कराता है, मोक्ष इत्यादि सब कुछ क्षणभर में प्राप्त हो जाता है।

### पाठगत प्रश्न 23.2

1. अन्त:करण कैसे शुद्ध होता है?
2. ट्यूबलाईट के दृष्टान्त के द्वारा अन्त:करण का शोधन कैसे होता, वर्णन कीजिए।
3. दो प्रकार की उपासना क्या है?
4. भक्तियोग और ध्यानयोग कैसे उपासनाओं में कैसे अन्तर्भूत होते हैं?

## 23.3 कर्मयोग

देह, इन्द्रिय और अन्त:करण में सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों के द्वारा अनेक प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं, इनका अध्यास वश के कारण आत्मा में प्राणि द्वारा आरोपित किया जाता है। गुणों के द्वारा होने वाले कर्म में अध्यास से संसक्त व्यक्ति कामादि के वशीभूत होकर मैं कर्म करता हूँ ऐसी कल्पना करता है। उसके बाद वह उन कर्मो के फल का भोग कर संसार का अनुभव करता है।

इस संसार से मुक्ति तो अध्यास के अत्यन्त निवृत्ति के द्वारा ही सम्भव है। देहेन्द्रियादि समूह का और आत्मन के मध्य में जो परस्पर अध्यास है वह अविद्या भी कही जाती है। अविद्या का ब्रह्मविद्या के द्वारा लम्बे समय के लिए निवर्तन करता है। ब्रह्मविद्या कामक्रोधादि का अशुद्ध मन में उत्पन्न नहीं होता। इसलिए साधन सर्वप्रथम अन्त:करण

की शुद्धि के लिए काम क्रोधादि को छोड़कर बिना संग कर्मों को करें।

बिना किसी के सङ्ग जो कुछ भी स्व इच्छानुसार करते हैं तो क्या वह कर्मयोग होता है। नहीं, अपने कर्तव्यों का कर्मों का सङ्ग के बिना पालन किया गया ही कर्मयोग कहलाता है। कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है, इसमें जब हमें संशय होता है तब शास्त्र और आचार्यों का वचन प्रमाणरूप में स्वीकार करना चाहिए। हमारे अपने कर्म, अथवा कर्तव्यकर्म अन्वय भेद के द्वारा पृथक् होते है। इसीलिए हमें शास्त्राचार्यों के वाक्यों को सुनकर विवेक-पूर्वक ही अपने धर्म का निश्चय करना चाहिए तथा वह स्वधर्म मोक्षार्थियों को योग बुद्धि के द्वारा आचरण करना चाहिए। इसीलिए भगवान गीता शास्त्र में कहते हैं-

**''तस्माच्छास्त्रम् प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थिततौ।**
**ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकर्तृसिहा इति॥''**
**( श्रीमद्भगवद्गीता )**

**''स्वे स्वेकर्मव्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'' ( श्रीमद्भगवद्गीता 18.45 )**
**''स्वकर्मण तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ( श्रीमद्भगवद्गीता 18.46 )**

**''श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**
**स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भेयावहः॥ ( श्रीमद्भगवद्गीता 18.47 )**

कर्मों का योगबुद्धि के द्वारा पालन ही कर्मयोग कहा गया है। मैं कर्ता हूँ इस प्रकार की कर्तृत्व-बुद्धि यह फल मेरा हो और फल की इच्छा के बिना वाली बुद्धि निस्वार्थता में रहती है वह योगबुद्धि कहलाती है। योगबुद्धि काम, क्रोधादि से कभी भी विचलित नहीं होती। योगबुद्धि से युक्त व्यक्ति सभी कर्मों को यत्नपूर्वक करता है। फिर भी कर्मफल की सिद्धि में उत्साहित नहीं होता, और उनके सिद्ध न होने पर रुष्ट भी नहीं होता। वह समत्वभाव से सब कुछ देखता है। इस प्रकार की बुद्धि के द्वारा यदि हम सब कर्म करें तो हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा, क्रम से साधनचतुष्टय सिद्ध होता है। इन सबको संकलितकर श्रीभगवान् ने कहा-

**''योगस्थः करूकर्मणिसङ्गंत्यक्त्वा धनञ्जय।**
**सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥''**
**( श्रीमद्भगवद्गीता 2.48 )**

कर्मयोग अभ्यसन का कोई कुकर उपाय है ईश्वरार्पण बुद्धि के द्वारा कर्मो का पालन। ईश्वर भक्त कर्मयोगी अपने कर्मों के आचरण के द्वारा भगवान् को पूजता है। वह कर्मों का फल नहीं चाहता भगवान मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे अन्तःकरण को निर्मल करे वह यही प्रार्थना करता है। इस प्रकार के कर्मयोगाभ्यास को श्री भगवान् ने गीताशास्त्र में उपदेश दिया है-

**''सर्वकर्माण्यापि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।**
**मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पद्मव्ययम्॥**

**चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।**
**बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥**
**( श्रीमद्भगवद्गीता 18.56, 57 )**

## 23.3.1 कर्मयोग का फल

कर्मयोग का प्रत्यक्ष फल है चित्त शुद्धि। और परम्परा फल तो मुक्ति है। निष्काम कर्मयोग महान् पुण्यकर्म है। निष्काम कर्मयोग से जनित पुण्यों के द्वारा चित्त के पाप नष्ट होते हैं। रागद्वेषादि अथवा कामक्रोधादि चित्त के पाप हैं। यह पाप ही चित्त के मल हैं। मलिन चित्त वेदान्त वाक्यों द्वारा बताये गये आत्मस्वरूप का भलीभाँति जानने में समर्थ नहीं होता। जब साधक सङ्गरहित कर्माचारण में निष्ठा होने पर पापों का विनाश हो जाता है, और चित्त की शुद्धि होती है।

लेकिन आरम्भ में ही साधक निष्काम कर्मयोग में निष्ठावान् नहीं होता है। अभ्यास के द्वारा वह कर्मयोग में निष्ठा कर्मयोग में निष्ठावान् साधक योगारूढ़ कहा जाता है। यहाँ पर योग शब्द अर्थ कर्मयोग है। योगारूढ़ का लक्षण श्रीभगवान् ने गीताशास्त्र में बताया है-

**''यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।**
**सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ ( श्रीमद्भगवद्गीता 6.4 )**

अन्वय यदा हिन इन्द्रियार्थेषु, अनुषज्जते, न कर्मसु (अनुसज्जते), सर्वसंकल्प सन्यासी, तदा योगारूढः उच्यते

**तात्पर्य**- जब सभी कर्तव्यों तथा कर्मों को करता हुआ कोई साधक सभी काम हेतुओं का त्याग करता है इन्द्रिय विषय और कर्म प्रवृत्त नहीं होता, तब वह कर्मयोगारूढ से जाना जाता है।

इस योगारूढ स्थिति को अथवा कर्मयोग निष्ठा को जब प्राप्त कर लेता है तब साधक का चित्त प्रायः शुद्ध रहता है। ''प्रायेण शुद्धम्-यद्यपि कर्मयोगेन चित्तशुद्धिः अनतिछतिउच्यते तथापि वान्तुतः कर्मयोगमात्रेण सम्पूर्ण तथा चित्तशुद्धिः न भवन्ति। ब्रह्मविद्या अथवा आत्मज्ञानेन एव चित्त सम्पूर्णतया शुद्धं भवति। चित्ते अवस्थितानि रागद्वेषादीनि मलनि आत्मज्ञानेनं एव नितान्तं विनश्यन्ति। तस्मात् कर्मयोगेन चित्तम् प्रायेण शुद्धम भवति इति उक्तम्''। चित्त शुद्धि ही इस कर्मयोगाभ्यास का प्रत्यक्ष फल है।

परम्परा के द्वारा तो कर्मयोगनिष्ठ साधक विवेक, वैराग्यादिरूप साधनचतुष्टय को प्राप्त कर वेदान्त वाक्यों का सारभूत जो आत्मस्वरूप ब्रह्म का प्रत्यक्ष करता है। ब्रह्म-प्रत्यक्ष

को ही ब्रह्मविद्या कहते है। आत्मस्वरूप विषयिनी इस विद्या के द्वारा आत्मस्वस्थविषयिणी अविद्या से निवृत्ति तथा संसार से मुक्ति होती है। यह गीताशास्त्र में श्रीभगवन् ने इस प्रकार उपदेश दिया है-

**''येषांत्वन्तगतम् पापं जनानाम् पुण्यकर्मणाम्।**
**ते द्वन्द्वमोहनिमुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 7.28)**

**अन्वय**- येषाम् पुण्यकर्मणां जनानां तु पापम् अन्तगतं ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः दृढव्रताः माम् भजन्ते

**तात्पर्य**- कर्मयोग को ही यहाँ पर पुण्यकर्म कहा गया है रागद्वेषादि अथवा कामक्रोधादि ही पाप है। इच्छा, द्वेष आदि द्वन्द्व होते हैं। द्वन्द्वनिमित्तक मोह हमारे चित्त को वश में कर हमें पापकर्मों में प्रवृत्त कराता है। जो लोग कर्मयोग नामक पुण्यकर्म करते हैं वे द्वन्द्वमोह से मुक्त होते हैं। इसीलिए उनका पाप क्रमपूर्वक नष्ट होता है और चित्त शुद्धि होती है। कर्मयोग में दृढ़निश्चय भक्त रखने वाले वे साधक परमात्मा को ही सदा सर्वदा भजते हैं। ब्रह्मविद्या के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर उसमें ही रमते हैं।

## 23.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का उपदेश

**''गीतासुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।**
**या स्वयम् पद्मना अस्य मुखपद्माद् निनिः सष्टताः॥''**

इस प्रकार मुक्ति ही कर्मयोग के परम्परा के द्वारा प्राप्त होने वाला फल है ऐसा जानना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता को विद्वान जन कर्मयोग कहते हैं। आत्मस्वरूप बोध के लिए जो साधन मार्ग है वही योग कहलाता है। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीताशास्त्र में अनेक प्रकार के योगों के सार का उपदेश दिया है, फिर भी कर्मयोग के विषय में भगवान् के द्वारा दिया गया उपदेश अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसीलिए लोक में भी प्रसिद्ध है -भगवद्गीता हमें अपने कर्मों का शंका रहित पालन करना चाहिए ऐसा बोध कराती है। गीताशास्त्र में शुरू से लेकर अनत तक कर्मयोग से सम्बन्धित श्लोक हैं। जैसे -

**''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।**
**मा कर्मफलहेतु र्भूःमाते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (अध्याय 2, श्लोक 47)**

**अन्वय**- कर्मणि एव अधिकारः। कदाचन फलेषु मा (ते अधिकारः स्यात्) कर्मफल हेतुः मा भूः। अकर्मणि ते सन्नः मा अस्तु॥

**तात्पर्य**- जिसका चित्त शुद्ध है वही कर्मो के परित्याग का अधिकारी है। कर्मों को त्यागकर शुद्ध चित्त साधन चतुष्टय में अन्तर्भूत शमादि को बढ़ाता है। इसीलिए जिसका

चित्त शुद्ध नहीं है वही आकांक्षा के द्वारा जो कर्म करता है उसका चित्त शुद्ध नहीं होता। इसलिए चित्त शुद्धि की कामना वाला जो व्यक्ति है केवल कर्म में ही अधिकार है न कि कर्मफलों में। वह कर्मफलों का स्वयं कारण न बनें, कर्मफल की इच्छा का त्याग करे यह अर्थ है। कर्म फल का परित्याग करना चाहिए। इसका आशय यह है कि कभी कोई भी कर्म को त्यागे इस का विचार कर भगवान् विशेषरूप से उपदेश देते हैं- तुम्हारे अकर्म सफल ना हो। कर्मों का त्याग कर आलस्य मत बनो। कर्म पालन के बिना चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती। इसलिए कर्मफल में जैसे सङ्ग नहीं होना चाहिए, वैसे ही कर्मों के पालन में भी सङ्ग ठीक नहीं है।

**''योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गत्यक्त्वा धनञ्जय।**
**सिद्धसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं भोग उच्यते॥ (अध्याय 2, श्लोक 48)**

**अन्वय**- (हे) धनञ्जय, योगस्थः (सन्) सन्नत्यक्त्वा सिद्धसिद्धयोः समः भूत्वा (च) कर्माणि करू। समत्वं योगः उच्यते।

**तात्पर्य** - कर्तृत्व बुद्धि और फल की अभिलाषा से रहित अन्तःकरण का जो समत्व है वही योग है। योग को आधार बनाकर के ही सभी प्रकार के सङ्ग का त्याग कर सकते हैं। योग में स्थित रहना और सङ्ग का त्याग जो चाहता है वह कर्ता कर्मफलों की सिद्धि और असिद्ध में सम होना चाहिए। वहा कारण यह है- समत्व ही योग कहलाता है।

## 23.4 यह अभ्यास के लिए है (परीक्षा हेतु नहीं है)

**न हि काश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।**
**कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ (अध्याय 3, श्लोक 5)**

**कर्मेन्द्रियाणि संयम्यय आस्तेमनसा स्मरन्।**
**इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 6)**

**यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभवेऽर्जुन।**
**कमैन्द्रियैः कर्मयोगम् असक्तः स विशिष्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 7)**
**यज्ञार्थात् कर्मणोन्यत्र लोकेऽयं कर्मबन्धनः।**

**तदर्थं कर्म कौन्तेय मूक्तसङ्गः समाचार॥ (अध्याय 3, श्लोक 9)**
**तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।**

**असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरूषः। (अध्याय 3, श्लोक 19)**
**प्रकृतेः क्रियामाणनि गुणैः कर्माणि सर्वशः।**

टिप्पणी

अहङ्कारिविमूढात्मा कर्ताहमितिमन्यते॥ (अध्याय 3, श्लोक 27)
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभाग्योः।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ (अध्याय 3, श्लोक 28)
मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ (अध्याय 3, श्लोक 30)
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ (अध्याय 3, श्लोक 34)
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (अध्याय 3, श्लोक 35)

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितम् बुधाः॥ (अध्याय 4, श्लोक 19)

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्ग नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैवकिञ्चित्करोति सः॥ (अध्याय 4, श्लोक 20)

निराशीर्यताचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्॥ (अध्याय 4, श्लोक 21)

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ (अध्याय 4, श्लोक 22)

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (अध्याय 5, श्लोक 10)

कायेन मनसा बुद्धया केवलौरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये॥ (अध्याय 5, श्लोक 11)

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शन्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फलं सक्तो निबध्यते॥ (अध्याय 5, श्लोक 12)

आरूरूक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ (अध्याय 6, श्लोक 3)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (अध्याय 6, श्लोक 4)

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 5)

**एतान्यपि तु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा फलानि च।**
**कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितम् मतमुत्तमम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 6)**

**कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।**
**सङ्ग त्यक्त्वा फलंचैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ (अध्याय 18, श्लोक 9)**

**न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।**
**यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ (अध्याय 18, श्लोक 11)**

**यतः प्रवृतिभूतिनां येन सर्वमिदं ततम्।**
**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (अध्याय 18, श्लोक 46)**

**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।**
**स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्मिषम्॥ (अध्याय 18, श्लोक 47)**

## 23.4.1 कर्मयोग के महत्व के विषय में स्वामी विवेकानन्द द्वारा किया गया उद्‌बोधन

अपने कर्तव्य कर्मों की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए, किसी को भी अपने कर्तव्यों का त्याग नहीं करना चाहिए, योगबुद्धि के द्वारा उसका पालन करना चाहिए। यह स्वामी विवेकानन्द जी भी हमें बता रहे हैं। कर्मयोग को आधार बनाकर स्वामी जी ने पाश्चात्य देश मे अंग्रेजी भाषा में बोले गये भाषणों से कुछ अंश हिन्दी भाषा में परिवर्तन नीचे दिये जा रहे हैं।

उन्नति, लाभ का एक ही उपाय है- हमारे पास जो कर्तव्य है उसका पालन उसके द्वारा शक्ति एकत्र कर क्रमपूर्वक परमपरा की और जाना चाहिए। जो अध्यापक हमेशा अर्थहीन जो कुछ भी कहता हैं उससे भी ज्यादा जो मोची है कम समय में चप्पल बनाकर देता है वह श्रेष्ठ है।

कोई युवा संन्यासी वन में गया। उस संन्यासी ने बहुत समय तक ध्यान, भजन और योगाभ्यास किया। बहुत वर्षों तक कठोर तपस्या कर किसी दिन वह पेड़ के नीचे बैठा। उस समय उसके सिर पर सूखे पत्ते गिरें। ऊपर देखते हुए उसने काले कौआ और एक बगुला को देखा। कौआ और बगुला आपस में लड़ रहे थे। उन दोनों को देखकर उन बहुत क्रोध आय। उन्होंने कहा-क्या तुम दोनों ने मेरे सिर पर सूखे पत्ते गिराने का साहस किया। इस प्रकार कहकर जब वह क्रोध के द्वारा उन दोनों को देखा तब उनके मस्तक से कुछ अग्निरश्मि के द्वारा उन दो पक्षियों को भस्म किया। उनके द्वारा किए गये योगीयास का इतना तेज था। वह बहुत आनन्दित हुए। मेरे पास ऐसी शक्ति विकसित हुई कि केवल देखते मात्र से काक और बगुला भस्म हो जाते हैं ऐसा विचार कर वह अत्यन्त आनन्द में विह्वल हो गए।

कुछ समय बाद भिक्षाटन के लिए उन्हें नगर जाना पड़ा। किसी के घर के सामने बैठकर वह बोले- हे माता मुझे भिक्षा दो। अन्दर से उत्तर आया- वत्स कुछ समय प्रतीक्षा करें। उस युवक ने सोचा- ये अभागन। कितना दु:साहस के द्वारा मुझे प्रतीक्षा करने को कह रही है। तू अब भी मेरी शक्ति को नहीं जानती। जब वह इस प्रकार विचार कर रहा था तब वही कण्ठध्वनि फिर से सुना- हे वत्स तुम अपने विषय में ज्यादा मत सोचो। यहाँ कौआ या बगुला नहीं है। वह आश्चर्य चकित हो गया। फिर भी उसको प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह महिला अन्दर से बाहर आई। वह उस महिला के पाँवों में गिरकर पूछा- हे माता तुम कैसे वह जानती हो। उस महिला ने कहा- हे तात मैं तुम्हारे योग अथवा तप कुछ भी नहीं जानती। मैं कुछ अलग तरह ही औरत हूँ। (A common everyday woman : a simple lady) तुम्हें प्रतीक्षा करने के लिए कहा क्योंकि मेरे पति रोग से पीड़ित है। मैं उनकी सेवा में तत्पर थी। मैं अपने पूरे जीवन काल में मेरे कर्तव्यों का पालन करने में तत्पर रहती हूँ। विवाह से पहले माता पिता के प्रति जो कर्तव्य पुत्री का होता है वह मैंने किया। अब जिनसे मेरा विवाह हुआ है उनके प्रति जो मेरे कर्तव्य है वह कर रही हूँ। मेरा बस इतना ही योगाभ्यास है। किन्तु कर्तव्य कर्मो के पालन से मुझे ज्ञान चक्षु प्राप्त हुई है। इसलिए मैं तुम्हारे मनोभाव को तथा जंगल में तुम्हारे द्वारा किया गया कृत्य सब कुछ जानती हूँ। इससे भी अधिक कुछ जानना चाहते हो तो पास ही के दूसरे नगर के बाजार में जाओ। वहाँ तुम किसी बहेलिया को देखोगे। वह तुमको उपदेश देगा, जिसको पाकर तुम आनन्दित हो जाओगे।

उस संन्यासी ने सोचा- उस नगर में किसी बहेलिया के पास क्यों जाऊँगा। लेकिन गृहिणी के साथ जो घटना घटी उससे उसमें कुछ ज्ञान का उदय हुआ था। इसलिए वह बहेलिया को देखने गया। उसके नगर के निकट आकर व्यापारी को देखा। दूर से ही संन्यासी ने वहाँ देखा-कोई हहा+कहा बहेलिया अच्छे से बैठकर मांस के टुकड़े कर रहा है। वह बहुत से लोगों से तेज आवाज में मूल्यादि विषय में कहता हुआ माँस बेच रहा था। युवा संन्यासी ने सोचा- हे भगवान मेरी रक्षा करो। क्या मुझे इसके पास से मुझे विद्या ग्रहण करना होगा। ये तो किसी पिशाच का अवतार प्रतीत होता है। इसी बीच उस बहेलिया ने मुख इधर-उधर करते हुए संन्यासी को देखकर बोला-हे स्वामी, क्या उस महिला ने आपको यहाँ भेजा है। जब तक मैं विक्रय नहीं कर लेता तब तक आप बैठे। यहाँ मेरा क्या होगा यह विचार कर सन्यासी बैठ गया। बहेलिया अपने कर्म में व्यस्त हो गया। माँस बेचकर तथा धन संग्रहकर के वह सन्यासी से बोला-आइए श्रीमान् मेरे घर पधारे। घर में पहुँचकर उस बहेलिया ने उन्हें आसन प्रदान कर बोला-यहाँ प्रतीक्षा करे। उसके बाद उस व्याध ने घर में प्रवेश कर अपने माता और पिता को स्नान करवाया। उसने माता और पिता को भोजन करवाया, उन दोनों को तृप्त करने के लिए हर प्रकार की व्यवस्था की। उसके बाद उस संन्यासी के पास आकर पूछा-आप यहाँ मुझे देखने आए हैं। कहिए मैं आपके लिए क्या सेवा कर सकता हूँ। उस संन्यासी ने आत्मा और परमात्मा विषयक कुछ प्रश्न किए। उसके उत्तर रूप में जो कुछ उस व्याध ने कहा वह अंशरूप में महाभारत के व्याध्र गीता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह

व्याध गीता बहुत अच्छी वेदान्त विद्या है, तथ दर्शन की पराकाष्ठा है। तुम सबने श्रीमद्भगद्गीता सुनी है वह श्रीकृष्ण का उपदेश है। भगवद्गीता को पढ़कर तुम सबको इस व्याध गीता को पढ़ना चाहिए। यह वेदान्त दर्शन का चूडामणि है।

व्याध का उपदेश समाप्त होने पर वह संन्यासी बहुत विस्मित हो गया। उसने व्याध से पूछा-तुम्हारे पास इतना अच्छा ज्ञान है, फिर भी इस व्याध शरीर को अपनाकर इस प्रकार कुप्सित कार्य को क्यों करते हो। तब व्याध ने उत्तर दिया-वत्स कोई भी कार्य कुत्सित नहीं है। कोई भी कर्म अपवित्र नहीं है। यह कार्य मेरे वंश परम्परा का है, यह मुझे प्रारब्ध से प्राप्त है। बाल्य अवस्था से ही मैंने यह कार्य का अभ्यास किया है। अनासक्त होकर मैं अपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर रहता हूँ। मैं योग नहीं जानता, संन्यास दीक्षा भी नहीं ली है। मैं कभी भी सांसारिक जीवन का परित्याग कर वन में भी नहीं गया। फिर भी मैंने सामाजिक स्थिति को आधार बनाकर मेरे जो कर्तव्य है उसको अनासक्त भाव से पालन करता है, मैंने यह ज्ञान प्राप्त किया है।

इस कहानी में बहेतिया और महिला आनन्द तथा आत्मसमर्पणपूर्वक अपने कर्तव्य कर्म को करते है। फलस्वरूप उन दोनों का आत्मज्ञान होता है। इस से यह स्पष्ट है कि जिस किसी आश्रम का (आश्रम चार होते हैं- ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के भेद से) कर्म करो, बिना सङ्ग के अपने कर्तव्य-कर्म का पालन से हम सबको आत्मस्वरूप विषयणी उस परम तत्व की अनुभूति हो। (आत्मस्वविषयी परमतत्व की अनुभूति ही ब्रह्म विद्या कही जाती है) प्राप्त करेंगे।

हमारे कर्तव्य प्रधानरूप से हमारे आस-पास की स्थिति के अनुरूप निर्धारित होते हैं। कर्तव्य कर्म का स्वभाव से ही लाघव या गौरव नहीं होता। सकाम कर्ता अपने भाग्य में जो कर्तव्य कर्म करना पड़े तो उससे असन्तुष्ट रहता है। लेकिन अनासक्त कर्ता सभी कर्तव्य समान तथा अच्छे होते हैं। वे अमोध अस्त्र होकर स्वार्थी और इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण नष्ट होते हैं, उसके बाद वह साधक मुक्ति के मार्ग में आगे बढ़ता है।

## पाठगत प्रश्न 23.3

1. कर्मयोग क्या है?
2. योगबुद्धि क्या है तथा उसके द्वारा क्या सिद्ध होता है?
3. कर्मयोग का क्या फल है, तथा वह कैसे प्राप्त होती है?

## 23.5 ध्यान योग

ध्यान योग को कुछ लोग उपासना भी कहते हैं बहिरङ्गसाधन रूप ध्यानयोग में सगुणब्रह्मविषयक उपासना हम सब ग्रहण करते हैं।

वेदान्तसार नामक ग्रन्थ में सदानन्द योगीन्द्र कहते हैं- ''उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापार रूपाणि शाण्डिल्या विद्या दीनि इति।'' सभी प्राणियों में आत्मस्वरूप ब्रह्म निर्गुण है। तथापि शास्त्र अथवा आचार्य के द्वारा उपासना के सौकार्य ब्रह्म में नाम और रूप की कल्पना करते हैं। इस प्रकार उपासना के सौकर्यार्थ कल्पित नाम और रूप वाला जो ब्रह्म है वह सगुण होता है यह बात शास्त्रों में प्रसिद्ध है। विष्णु, शिव, दुर्गा इत्यादि देवता सगुणब्रह्म के भिन्न-भिन्न रूप हैं हमारे ईष्ट सगुणब्रह्म रूप को आधार बनाकर हम सब गुरू के उपदेशों का अनुसरण करते हुए उपासना कर सकते हैं। यह उपासना मन से ही की जाती है। इसलिए उपासना मन का व्यापार है।

''शाण्डिल्यविद्या नाम से विख्यात एक उपासना छान्दोग्योपनिषद् में दिखाई देती है। शाण्डिल्यविद्या यहाँ पर विद्या इस शब्द का अर्थ उपासना है।''

## 23.5.1 ध्यान योग का अभ्यास करना चाहिए

चित्त शुद्धि अथवा अन्त:करण शुद्धि क्रम से अभ्यास के द्वारा सम्पादन करना चाहिए। पहले कर्मयोग का अभ्यास करना चाहिए, उसके बाद ध्यानयोगाभ्यास करना चाहिए। तो केवल कर्मयोग के द्वारा ही चित्त शुद्ध होता है, क्यों ध्यानयोग का भी अभ्यास करना चाहिए ऐसी शंका होती है। तो कहते हैं- अत्यन्त एकाग्रचित्त तथा केवल कर्मयोग के माध्यम से अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्यों को तो ध्यान योगाभ्यास भी विशेष रूप से करना चाहिए। चित्त की शुद्धि चित्त के मलों का और चित्त विक्षेपणों के नाश के द्वारा ही सम्भव है। चित्तमल का नाश प्राय: कर्मयोगाभ्यास के द्वारा होता है। चित्तविक्षेपणों का नाश तो ध्यानयोग से होता है।

पूर्व पूर्व जन्म के सुकृत् और दुष्कृत जो चित्त में रहते है वह चित्तमल कहे जाते हैं। बिना किसी सङ्ग के कर्मयोग का पालन करने से यह नष्ट होते है। इस प्रकार चित्त क्रम से शुद्ध होता है। लेकिन जब तक चित्तविक्षेपों का नाश नहीं हो जाता तब तक चित्त शुद्धि नहीं होती ऐसा जानना चाहिए। निर्मल और एकाग्रचित्त शुद्ध कहाँ जाता है। विक्षेपयुक्त चित्त एकाग्र नहीं होता। एकाग्र रहित चित्त पूर्णरूप से शुद्ध नहीं होता। इसलिए चित्त शुद्धि के लिए चित्त विक्षेपों को रोकना चाहिए। चित्त के विक्षेप है- काम, क्रोध आदि (कामक्रोधद्य: मनोविक्षेपा: क्वचित् रागद्वेषादिशब्दै: अपि उच्यन्ते।) उन विक्षेपों के संस्कार कारण होते है। संस्कारों के द्वारा विक्षेप नामक चित्तवृत्ति बार-बार उत्पन्न होते है। चित्त का वर्तन ही वृत्ति है। कभी-कभी चित्त कामरूप के द्वारा होता है। कभी क्रोधरूप में रहता है। फिर कभी लोभ रूप में। जब चक्षुरादि इन्द्रियाँ बाहर के साथ सम्बन्ध बनता है। तब चित्त अथवा अन्त:करण में काम, आदि वृत्तियां उत्पन्न होती है। ईप्सित किसी वस्तु को देखने पर मन कामरूप में है। जो ईप्सित नहीं है उसको देखने पर मन क्रोधरूप में रहता है। इसी प्रकार प्रतिक्षण जो है अन्त:करण में काम, क्रोध आदि रूप रहते है। इन्हीं कामादि वृत्तियों के कारण अन्त:करण विक्षिप्त होता है। इसलिए

टिप्पणी

यह वृत्तियाँ ही चित्त के विक्षेप होते है। विक्षेपों का जब संस्कारों के साथ क्षीण होता है तब अन्त:कारण एकाग्र होता है। एकाग्र अन्त:करण ही विशुद्ध होता है। चित्त की एकाग्रता के लिए ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिए। ध्यानभ्यास के द्वारा चित्त में रहने वाले विक्षेपकारणों का तथा संस्कारों का तब जाकर विक्षेपों का नाश सम्भव होता है।

## 23.5.2 श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यानयोग का उपदेश

**आरूकक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।**
**योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 3)

**यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।**
**सर्वसङ्कल्प संन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 4)

**योगी युञ्जीत सततं आत्मानं रहसिस्थितः।**
**एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 10)

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिर गासनमात्मनः।**
**नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 11)

**तत्रैकाग्रमनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।**
**उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 12)

### पाठगत प्रश्न 23.4

1. उपासन का वेदान्त सार में प्रोक्त लक्षण क्या है?
2. चित्तवृत्ति क्या है?
3. चित्तविक्षेप क्या है?
4. चित्तविक्षेप किससे निरोदृव्य हैं?
5. ध्यान योगाभ्यास किसलिये होता है?

## 23.6 भक्ति योग

विषय वस्तुओं में विराग और ईश्वर में अनुराग भक्ति कहलाती है। भगवान में परम प्रेम ही भक्ति है, ऐसा नारद भक्ति सूत्र में प्रोक्त है। नारद् प्रह्लाद इत्यादि बहुत पुराण प्रसिद्ध भगवत्भक्तों की कथाएँ सुनी जाती है। पुरा अल्वर प्रसिद्ध विष्णुभक्त थे, न्यनार नामक शिवभक्त और द्रविड़ में भक्तिमार्ग के प्रवर्तक थे। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, कनकदास, पुरन्दरदास, अक्कमहादेवी, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, चैतन्य महाप्रभु इत्यादि गणनीय भगवत्भक्तों ने भारतवर्ष के भिन्न प्रान्तों में भक्तिवेदान्त को प्रचारित किया।

### 23.6.1 बहुधा भक्ति

लोक में कुछ भक्त होते हैं जो रोग आदि दु:खों की निवृत्ति अथवा धन आदि विषय की प्राप्ति की इच्छा करते हुए ईश्वर को भजते हैं।

कुछ तो स्वाभीष्ट रूप में ईश्वर को देखकर उनका निरन्तर ध्यान करते हैं। कुछ पुन: केवल आत्मज्ञान की ही इच्छा करते हुए भगवान में भक्ति करते हैं। अन्य में कुछ अल्पल्प ''भगवान मेरी और अन्य भूतों की अन्तरात्मा हैं?'', ऐसा ज्ञान व्याप्त करें सर्वात्मस्वरूप शुद्ध उस ब्रह्म में भक्तियुक्त होकर निवास करते हैं। श्रीकृष्ण भगवान चार प्रकार के भक्तों का निर्देश करके उनमें यह जो ज्ञानी है, वही श्रेष्ठ भक्त है, ऐसा कहते हैं-

**चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्तो जिज्ञासरर्थार्थी ज्ञानी च भतर्षभ॥**

**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिरूयते।**
**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम् अहं स च मम प्रिय:॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7, श्लोक 16-17)

**अन्वय**- हे भरतर्षभ, (हे) अर्जुन, आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के सृकृति युक्त लोग मुझे भजते हैं। उनकी नित्य युक्त एक भक्ति वाला (पवित्र कर्म करने वाले) ज्ञानी विशिष्ट (श्रेष्ठ) होता है। क्योंकि ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे प्रिय है।

**शब्दार्थ**- भरतर्षभ = भरतकुलीनों में श्रेष्ठ, आर्त: = दु:खिता, जिज्ञासु: = ज्ञानेच्छुक, अर्थार्थी = धन का इच्छुक, सुकृतिन: = पुण्यवान, नित्ययुक्त = जो नित्य है, उसके साथ परमात्मा युक्त है, एकभक्ति = एकनिष्ठा भक्ति के साथ, विशिष्यते = श्रेष्ठ है।

## 23.6.2 निर्गुण ब्रह्मविषयी भक्ति

**मोक्ष कारणसामग्र्याम् भक्तिरेव गरीयसी।**
**स्वस्वरूपानुसन्धानम् भक्तिरित्यभिधीयते॥ (विवेकचूड़ामतिण : 32)**

**अन्वय**- मोक्षकारण सामग्री में भक्ति ही श्रेष्ठ है। अपने स्वरूप के अनुसन्धान को भक्ति कहा जाता है।

**शब्दार्थ** - कारणसामग्री = साधनसमूह, गरीयसी = श्रेष्ठ, स्वस्वरूपानुसन्धानम् = स्वयं को जो स्वरूप है, उसका अनुसन्धान, आत्म = स्वरूप ब्रह्म का अनुसन्धान, अनुसन्धानम् = विचार, अभिधीयते = कहा जाता है।

**तात्पर्य**- मोक्ष के जो साधन होते हैं उनमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। वह भक्ति क्या है? आत्मस्वरूप ब्रह्म का स्वरूप-अनुसन्धान ही भक्ति है। शंकरभगवत्पाद के द्वारा यह यहाँ निर्गुण ब्रह्म-विषयक भक्ति कही गई है।

आत्म स्वरूप के अनुसन्धान रूप भक्ति क्रमशः आत्मस्वरूप के ज्ञान रूप में परिणत होती है। निर्गुण ब्रह्म में पूर्व यत्न से की गई यह भक्ति अभ्यास द्वारा साधक के अन्तःकरण में दृढ़ होती है। सुदृढ़ यह निर्गुण ब्रह्म विषयक भक्ति (निर्गुण ब्रह्म विद्या) संसार हेतुभूत निर्गुण ब्रह्म विषयक अविद्या को नष्ट करती है। और उससे मुक्ति होती है।

**भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः।**
**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18, श्लोक 55)

सभी प्राणियों के आत्मरूप में अवस्थित जो निर्गुण ब्रह्म है वही श्रीभगवान् का वास्तविक स्वरूप है। यह जगदीश्वर के वास्तविक स्वरूप को हम ब्रह्मविद्या द्वारा ही जानते हैं। इस प्रकार भक्ति के द्वारा मुझे जानते हैं, ऐसी यहाँ श्रीभगवान् द्वारा उक्त जो भक्ति है वही ब्रह्मविद्या है।

ब्रह्मविद्या रूप यह निर्गुण ब्रह्म विषयक भक्ति चतुर्थ प्रकार की भक्ति है, ऐसा भी कहा जाता है। आर्त की भक्ति प्रथम, जिज्ञासु की भक्ति द्वितीय, अर्थार्थी की भक्ति तृतीय और ज्ञानियों की भक्ति चतुर्थ प्रकार की होती है। इस भक्ति के द्वारा साधक मुक्त होता है।

निर्गुण ब्रह्म में भक्तिमत का लक्षण है-

**अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करूण एव च।**
**निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।**

**सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥**

टिप्पणी

**यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।**
**हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥**

**अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।**
**सर्वारम्भपरित्यागी योमद्भक्तः स मे प्रियः॥**

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।**
**शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥**

**समः शत्रै च मित्रे च तथा मानापमानयोः।**
**शीतोष्णसुखदुः खेषु समः सङ्गविवर्जितः॥**

**तुल्यनिन्दास्तुतिर्मोनी सन्तुष्टो येन केनचित्।**
**अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 12, श्लोक 13-19)

## 23.6.3 सगुण ब्रह्मविषयक भक्ति

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् इत्यादि श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् द्वारा गीताशास्त्र में वर्णित जो निर्गुण ब्रह्मभक्त है वह आत्मज्ञानी ही है। अत्यन्त शुद्धचित्तों तथा उसके समान महात्माओं के द्वारा ही सर्वात्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्म में यथायथम् ज्ञानरूप भक्ति की जा सकती है। अन्यों के द्वारा निर्गुण ब्रह्मभक्ति लाभ के लिये तथा ब्रह्मविद्या की कामनाओं के लिये आदि में सगुण ब्रह्म में भक्ति अभ्यसनीय है।

सर्वात्मभूत परम ब्रह्म में उपासना के सुकरता के लिये शास्त्र अथवा आचार्य के द्वारा, नाम, रूप आदि कल्पित होते हैं। वह ही उपास्य ब्रह्म और सगुण ब्रह्म वेदान्त शास्त्र में प्रसिद्ध है। शास्त्र को अवलम्बित करके जीवों के द्वारा किये अन्तःकरण में होने वाली भावनाओं के द्वारा सभी के आत्मस्वरूप जो ब्रह्म है वह निर्गुण भी सगुण होता है। सगुण ब्रह्म में क्रियामाण प्रेम (किया जाने वाला प्रेम) सगुण भक्ति कहलाता है।

शुद्ध ब्रह्म का ही भक्तों की भावना के अनुरूप रामरूप में, कृष्ण रूप में, शिवरूप में और दुर्गा के रूप में आविर्भाव होता है। और इस प्रकार विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश, सरस्वती इत्यादि देवता सगुण ब्रह्म के भिन्न रूप होते हैं। इन देवताओं की भजन, उपासना विधि का विवरण पुराण आदि शास्त्रग्रन्थों में दिखता है। उपासकों की भक्ति की वृद्धि के लिये इन देवताओं की अवतारकथाएँ, लीलावर्णन इत्यादि उन ग्रन्थों में विस्तृत हैं।

सगुणब्रह्म में फल कामना से जो भक्ति करते हैं, वे उस फल को प्राप्त करते हैं। किन्तु उनकी चित्तशुद्धि नहीं होती है। अतएव श्रीभगवान् ने गीताशास्त्र में कहा-

**"यो यो यां यां तनूम् भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति।**
**तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥**

**स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।**
**लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हितान्॥'' ( 7/21,22 )**

नारदभक्ति सूत्र में भक्ति इस प्रकार निरूपित है- सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। इस ईश्वर में परम प्रेम ही भक्ति का रूप है, ऐसा नारद महर्षि हमें बोध कराते हैं। भगवान को जो परम प्रेम से भजते हैं वे भगवान कृपा से शुद्धचित्त वाले होकर ब्रह्मविद्या को व्याप्त करके संसार से मुक्त होत हैं। यह श्रीभगवान् स्वयं गीताशास्त्र में प्रतिज्ञा करते हैं-

**मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥**

**तेषां सततयुक्तानाम् भजताम् प्रीतिपूर्वकम्।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥**

**तेषामेवानुकम्पार्थम् अहमज्ञानजं तमः।**
**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ ( 10/9,10,11 )**

**ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।**
**अन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥**

**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।**
**भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ ( 12/6,7 )**

## 23.6.4 भागवत प्रसिद्ध नविध भक्ति

सगुण ब्रह्म में भक्ति कैसे अभ्यास करनी चाहिए, ऐसी जिज्ञासा होती है। नौ सोपानों द्वारा समन्वित कोई भक्तिमार्ग श्रीकृष्ण के भक्तों के लिये भागवत महापुराण में निरूपित होता है। यह भक्ति नवधा भक्ति है, ऐसा प्रसिद्ध है। इन मार्ग से हम न केवल श्रीकृष्ण में अपितु हमारे अभीष्ट सगुण ब्रह्म के जिस किसी भी रूप में भक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ ( भागवत महापुराण 7.5.23 )**

**श्रवण** - विष्णु के सर्वव्यापी ईश्वर के नाम और महात्म्य का श्रवण।

**कीर्तन** - भगवान के गुणों और नाम का संकीर्तन और गान।

**स्मरण** - भगवान के विषय में ही सर्वदा स्मरण।

**पादसेवन** - भगवान के पादपद्मों की सेवा

**अर्चन** - भगवान की पूजा।

**वन्दन** – नमस्क्रिया।

**दास्य** – भगवान का दास रूप में आचरण।

**सख्य** – भगवान के साथ सौहार्द।

**आत्मनिवेदन** – भगवान में आत्म-समर्पण।

## 23.6.5 भक्तियोगविषयकाः श्लोकाः

**पत्रम् पुष्पम् फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।**
**तदहम् भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9.26)**

**यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम्॥ (9.27)**

**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।**
**ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि तो तेषु चाप्यहम्॥ (9.29)**

**अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥ (9.30)**

**क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ (9.31)**

**नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे**
**यद्यद् भाव्यम् भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।**

**एतत् प्रार्थ्यम् मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि**
**त्वत्पादाम्भोरूहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥**

(राजा कुलशेखरः मुकुन्दमालास्तोत्रे)

**तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।**
**अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥ (श्रीकृष्णचैतन्यः शिक्षाष्टके)**

## पाठगत प्रश्न 23.5

1. भक्ति क्या है?
2. भगवद्गीता के अनुसार चार प्रकार के भक्त कौन हैं?
3. निर्गुणब्रह्मविषयी भक्ति क्या है?

4. सगुण ब्रह्मविषयी भक्ति क्या है?

5. नवविधा (नवधा) भक्ति प्रख्यापक भागक्तश्लोक क्या है?

## 23.7 यम, नियम आदि

छः वैदिक दर्शनों में योगदर्शन अन्यतम है। महर्षि पतञ्जलि इस दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। पतञ्जलि महर्षि द्वारा प्रणीत योगसूत्र नामक ग्रन्थ में अष्टांग योग मार्ग वर्णित है। इस योग के आठ अंग अथवा सोपान हैं, अतः यह योग अष्टांग योग नाम से प्रसिद्ध है। पातञ्जल योग के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन आठ अंगों में यम से आरम्भ होकर प्रत्याहार तक जो अंग हैं, वे अन्तःकरण शुद्धि के द्वारा साधन चतुष्टय की उत्पत्ति के प्रति उपाय होते हैं, ऐसा वेदान्त दर्शन के आचार्य स्वीकार करते हैं।

इन अगों में यम आदि अगों का अर्थ नीचे प्रदर्शित है-

| | |
|---|---|
| **यम** | अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पाँच यम शब्द द्वारा कहे जाते हैं। |
| **नियम** | शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर, प्राणिधान, ये पाँच नियम शब्द द्वारा कहे जाते हैं। |
| **आसन** | स्थिरता और सुख से दीर्घकाल तक उपवेशन (बैठना) जैसे सम्भव होता है, वैसे हाथ, पैर आदि का संस्थापन आसन कहलाता है। पद्मासन, स्वस्तिकासन, इत्यादि नामों के द्वारा बहुत प्रकार के आसन प्रसिद्ध हैं। |
| **प्राणायाम** | रेचक, पूरक, कुम्भक, ये तीन उपायों के द्वारा किया जाने वाला प्राण निग्रहार्थक अभ्यास प्राणायाम रूप में व्यपदिष्ट है। |
| **प्रत्याहार** | विषय वस्तुओं के द्वारा इन्द्रियों का प्रत्याहरण प्रत्याहार कहलाता है। |

### पाठगत प्रश्न 23.6

1. यम क्या हैं?

2. नियम क्या हैं?

3. प्रत्याहार का क्या लक्षण है?

टिप्पणी

## 23.8 परम्परा साधनों का फल

परम्परा साधन चित्तशुद्धि के कारण होते हैं, ऐसा पूर्व में ही आपाततः प्रोक्त है। वस्तुतः एक-एक भी परम्परा साधन चित्त में भिन्न-भिन्न सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। चित्त में स्थित पुण्य, पाप आदि मलों का नाश कर्मयोग से होता है। चित्त के जो विक्षेप हैं उनका क्षय उस एकाग्रता और ध्यानयोग का फल है। भक्तियोग के यह दो फल हैं। यम, नियम आदि का भी वही है।

| | |
|---|---|
| कर्म योग | – |
| ध्यान योग | – |
| भक्ति योग | अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा साधन चतुष्टय सम्पत्ति |
| यम, नियम आदि | वेदान्तवाक्यों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा ब्रह्म विद्या की उत्पत्ति |

### पाठसार

चित्तशुद्धि के कारण रूप साधन ही परम्परा साधन अथवा बहिरंग साधन कहलाते हैं। कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, यम, नियम इत्यादि नाना प्रकार के परम्परा साधन शास्त्र में निर्दिष्ट हैं। कर्तत्व बुद्धि और फलाभिसन्धि को वर्जित करके योग-बुद्धि के द्वारा नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित आदि कर्मों का समानुष्ठान कर्मयोग कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म की उपासना में ध्यान और भक्ति का अन्तर्भाव होता है। तथापि ध्यान योग उपासना शब्द से अधिक निर्दिष्ट है। निर्गुण ब्रह्म स्वरूप का अनुसन्धान अथवा सगुण ब्रह्म में प्रेम भक्ति है, ऐसा कहा जाता है। यम आदि पतञ्जलि के अष्टांग योग मार्ग में प्रसिद्ध हैं। कर्मयोग आदि में एक अथवा एकाधिक साधन से जिसका अन्तःकरण प्रायः शुद्ध होता है, उसमें ही सहकारी साधन प्रकाशित होते हैं।

### पाठान्त प्रश्न

1. शास्त्र में निर्दिष्ट नाना प्रकार के परम्परा सम्बन्ध कौन से हैं?
2. अन्तःकरण कैसे शुद्ध होता है, यह विद्युतदीप दृष्टान्त द्वारा वर्णित करें।
3. उपासना क्या है, दो प्रकार की उपासना क्या है? भक्तियोग और ध्यानयोग कैसे उपासना में अन्तर्निहित हैं?
4. कर्मयोग का क्या फल है, और वह कैसे प्राप्त होता है?

2. उपासना का वेदान्त सार में प्रोक्त लक्षण क्या है?
3. चित्तवृत्ति क्या है?
4. चित्तविक्षेप क्या है, वे किससे निरोद्धव्य हैं?
5. ध्यान योगाभ्यास क्यों होता है?
6. भक्ति क्या है, उसके दो प्रकार क्या हैं?
7. भगवद्गीता के अनुसार चार प्रकार की भक्ति कौन सी है, सुश्लोक व्याख्या कीजिए।
8. निर्गुण ब्रह्मभक्ति और सगुण ब्रह्म भक्ति में क्या भेद हैं?
9. भागवत प्रसिद्ध नौ प्रकार की भक्ति को व्याख्यात कीजिए।
10. यम और नियम क्या हैं?
11. परम्परा साधनों का फल क्या है?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### उत्तर-23.1

1. परम्परा साधन बहिरन्न साधन भी कहलाते हैं।
2. चित्तशुद्धि के कारक साधन ही परम्परा साधन होते हैं। वे नाना प्रकार के शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं। यथा छान्दोग्योपनिषद् में आहार शुद्धि से चित्त शुद्धि होती है, ऐसा उक्त है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ, दान, तप, इत्यादि ध्यान पूर्वक से अनुष्ठित चित्तशुद्धि के कारण होते हैं, ऐसा हमें उपदेश देते हैं। महर्षि मनु, मनुस्मृति में तप चित्तशुद्धि का साधन होता है, ऐसा बोध कराते हैं। कर्म योग द्वारा चित्तशुद्धि होती है, ऐसा भी श्रीभगवान् गीताशास्त्र में समुपदेशित करते हैं। ध्यान से चित्त शुद्ध होता है, ऐसा भी भगवान् गीताशास्त्र में कहते हैं। योगदर्शन में प्रसिद्ध, यम, नियम आदि साधन भी अन्तःकरण की शक्ति को उत्पन्न करते हैं, ऐसा शंकरभगवत्पाद ब्रह्मसूत्रभाष्य में स्वीकार करते हैं। अन्य भी बहुविध साधन सत्त्व शुद्धि के कारण शास्त्रों में सुने जाते हैं।

### उत्तर-23.2

1. शास्त्रों में बहुत प्रकार के कर्म और उपासनाएँ विहित हैं। यदि हम इन कर्मों और उपासनाओं का अनुष्ठान फल की इच्छा से ही करें तो भी हम पुनः पुनः कामनाओं के वशीभूत ही होते हैं। प्रत्युत यदि फल की इच्छा को त्याग कर

हम कर्मोपसना के अनुष्ठान में रत हों तो हमारा अन्त:करण शुद्ध और एकाग्र होगा।

2. विद्युतदीप प्रकाशक द्रव्य से पूर्ण है तो भी उसके बाहर का स्थान धूल आदि मलिनता युक्त हो तो वह स्वयं के अन्दर निहित दीप्ति से बाहर प्रकाशन में असमर्थ होता है। इस प्रकार अन्त:करण प्रकाशनशील सत्त्वगुण सहित हो तो भी रजस् और तमस् के योग से अशुद्ध होता है, अत: स्वयं के अन्दर निहित ब्रह्म के प्रकाशन में असमर्थ होता है। उससे यदि हमारे द्वारा ब्रह्मविद्या इच्छित होगी तो भी प्रथमत: अन्त:करण की शुद्धि यत्न द्वारा सम्पादन करनी चाहिए। अन्त:करण में विद्यमान सत्त्वगुण से रजोगुण और तमोगुण दूर करने चाहिए, यह अर्थ है।

3. सगुण ब्रह्मविषयक और निर्गुण ब्रह्मविषयक दो प्रकार की उपासना है।

4. मानस व्यापार रूप उपासना है। ध्यान और भक्ति मन द्वारा की जाती है। उसके कारण ध्यानयोग और भक्तियोग का मानस व्यापार रूप उपासना में अन्तर्भाव होता है।

**उत्तर-23.3**

1. कर्म का योग बुद्धि द्वारा समानुष्ठान ही कर्मयोग कहलाता है। 'अहं करोमि' ऐसी कर्तृत्व बुद्धि और 'इदं फलं मम भवतु', ऐसी फलों के द्वार सन्धि के बिना स्वयं के कर्मों का समनुष्ठान कर्मयोग कहलाता है।

2. 'अहं करोमि', ऐसी कर्तत्व बुद्धि और 'इदं फलं मम भवतु', ऐसी फलों की अभिसन्धि के बिना जो बुद्धि निस्स्वार्थता में रहता है, वही योगबुद्धि है। योगबुद्धि काम, क्रोध आदि के द्वारा कभी भी विचलित नहीं होती है। योगबुद्धि युक्त व्यक्ति सभी कर्मों को यत्नपूर्वक करता है तो भी कर्म-फलों के सिद्धि में प्रसन्न नहीं होता और उनकी असिद्धि में खिन्न नहीं होता। वह समत्व से सभी को देखता है। इस बुद्धि के द्वारा यदि हम कर्मों को करते हैं तो हमारा अन्त:करण शुद्ध होगा और क्रम से साधन चतुष्टय सम्पन्न होगा।

3. कर्मयोग का अन्त:करण शुद्धि ही फल है। कर्मयोग महान पुण्यकर्म है। निष्काम कर्मयोग से उत्पन्न पुण्य से चित्त का पाप नष्ट होता है। राग, द्वेष आदि अथवा काम, क्रोध आदि चित्त के पाप हैं। यह पाप ही चित्त का मल है। मलिन चित्त वेदान्त वाक्य द्वारा बोधित आत्मस्वरूप के सुष्ठु (सम्यक्) ग्रहण में समर्थ नहीं होता है। जब साधक ध्यानपूर्वक कर्माचरण में निष्ठा प्राप्त करता है तब पाप नष्ट होते हैं और चित्त शुद्ध होता है।

**उत्तर-23.4**

1. उपासना सगुण ब्रह्मविषयक मानस व्यापार रूप शाण्डिल्य विद्या आदि हैं।

टिप्पणी



2. चित्त का वर्तन ही वृत्ति कहलाती है। कभी चित्त कामरूप में होता है। और कभी क्रोध रूप में होता है। कभी पुनः लोभ रूप मे। जब चक्षु आदि इन्द्रिय बाह्य पदार्थों के द्वारा सम्बन्ध प्राप्त करते हैं तब चित्त अथवा अन्तःकरण काम आदि वृत्ति को धारण करते हैं। इष्ट किसी वस्तु के दर्शन से मन काम रूप होता है। अनिष्ट किसी वस्तु के दर्शन से मन क्रोधरूप होता है। इस प्रकार काम, क्रोध आदि चित्त की वृत्तियाँ कहलाती हैं।

3. काम आदि वृत्तियों के द्वारा ही अन्तःकरण विक्षिप्त होता है। उसके कारण ये वृत्तियाँ ही चित्त का विक्षेप हैं।

4. निर्मल और एकाग्र चित्त शुद्ध कहलाता है। विक्षेपों के द्वारा चित्त अनेकाग्र होता है। अनेकाग्र चित्त सम्पूर्णतः शुद्ध नहीं होता। उससे चित्तशुद्धि के लिए चित्तविक्षेप निरोद्धव्य है।

5. ध्यानयोगाभ्यास चित्तविक्षेपों के नाश से चित्त एकाग्रताया के और उससे चित्तशुद्धि के सम्पादन के लिए। विक्षेपों के हेतु संस्कार होते हैं। संस्कारों के द्वारा विक्षेप रूपी चित्तवृत्तियाँ पुनः पुनः उत्पन्न होती हैं। ध्यानाभ्यास से चित्त में अवस्थित विक्षेप हेतुओं के संस्कारों का और उससे विक्षेपों का क्रमशः नाश होता है। और उससे चित्त एकाग्र और शुद्ध होता है।

## उत्तर-23.5

1. विषय-वस्तु में विराग, ईश्वर में अनुराग भक्ति कही जाती है। भगवान् में परम प्रेम ही भक्ति है, ऐसा नारदसूत्र में प्रोक्त है।

2. आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी, ये चार प्रकार के भक्त भगवद्गीता में भगवान् द्वारा कहे गए हैं।

3. आत्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्म का स्वरूपानुसन्धान ही निर्गुण ब्रह्मविषयी भक्ति है। आत्मस्वरूप की अनुसन्धानरूप भक्ति क्रमशः आत्मस्वरूप ज्ञानरूप में परिणत होती है। निर्गुण ब्रह्म में पूर्व यत्न से की गई यह भक्ति अभ्यास द्वारा साधक के अन्तःकरण में दृढ़ होती है। सुदृढ़ यह भक्ति निर्गुण ब्रह्म विद्या रूप को प्राप्त करके संसार के हेतुभूत निर्गुण ब्रह्मविषयक अविद्या को नष्ट करती है।4

4. सर्वात्मभूत परम ब्रह्म में उपासना की सुकरता के लिए शास्त्र अथवा आचार्य द्वारा नाम, रूप सगुण ब्रह्म है, ऐसा वेदान्तशास्त्र में प्रसिद्ध है। शास्त्र आलम्बन करके जीवों के द्वारा किये गए अन्तःकरण में होनी वाली भावनाओं के द्वारा सभी के आत्मस्वरूप जो ब्रह्म है, वह निर्गुण भी सगुण होता है। इस सगुण ब्रह्म में राम, कृष्ण, गणेश, दुर्गा आदि रूप में (किया गया) क्रियमाण प्रेम सगुण भक्ति कहलाता है। सगुण भक्ति से सगुण ब्रह्म की कृपा प्राप्त कर भक्त विशुद्ध अन्तःकरण वाला होकर ब्रह्म विद्या प्राप्त करता है।

5. ''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।''

**उत्तर-23.6**

1. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं।
2. शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान नियम हैं।
3. ''विषयवस्तुभ्यः इन्द्रियाणां प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।''

**।।तेइसवाँ पाठ समाप्त।।**